अध्याय-6

आत्मसंयमयोग-नामक छठा अ0।।

[1-4 कर्मयोग का विषय और योगारूढ़ पुरुष के लक्षण]

श्रीभगवानुवाच-अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निः न च अक्रियः।। 6/1

यः कर्मफलं अनाश्रितः कार्यं कर्म	जो कर्मफल का आश्रय न लेकर {एडवांस सच्चीगीता-मतानुसार} करने योग्य कर्म
करोति स संन्यासी च योगी च	करता है, वह {बेहद का} संन्यासी {भी है} और कर्म {करते भी} योगी है; किन्तु
निरग्निः न च अक्रियः न	ज्ञान-योगाग्निहीन {कर्मभोगी} नहीं और {निठल्ला/} निष्क्रिय {संन्यासयोगी भी} नहीं।

यं सन्न्यासं इति प्राहुः योगं तं विद्धि पाण्डव। न हि असन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन।। 6/2

पाण्डव यं संन्यासं इति प्राहुः	हे पाण्डव! जिसको {मनसा संकल्पों से भी} संपूर्ण त्यागी=संन्यासी, ऐसा कहा जाता है, {वास्तव में}
तं योगं विद्धि हि कश्चन	{कर्मघमंडरहित} उसको कर्मयोग समझो; क्योंकि कोई {इन्द्रियों से करता या न करता हुआ}
असंन्यस्तसंकल्पः योगी न भवति	सर्वसंकल्पों का संपूर्ण त्यागी नहीं है {तो} योगी नहीं होता; {सांसारिक भोगी ही है।}

आरुरुक्षोः मुनेः योगं कर्म कारणं उच्यते। योगारूढस्य तस्य एव शमः कारणं उच्यते।। 6/3

योगं आरुरुक्षोः मुनेः कर्म	योग-स्थिति में चढ़ने के इच्छुक मुनि के लिए {मन-व.-कर्म से अलौकिक हुआ} यज्ञकर्म
कारणमुच्यते तस्य शमः एव	{ऊँची अव्यक्त स्थिति का} कारण कहा है {और तन-धनादि के •त्याग से} उसके चित्त की शांति ही
योगारूढस्य कारणं उच्यते	योगारूढ़ के {एकटिक होने का} कारण कही है; {'त्यागाच्छान्तिरनन्तरं' (गी. 12-12)}

यदा हि न इन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्जते। सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढः तदा उच्यते।। 6/4

हि यदा सर्वसंकल्पसंन्यासी	क्योंकि जब {कामविकार के संकल्प सहित} सब संकल्पों का संपूर्ण त्यागी, {आत्मबिंदु स्मृति से}
न कर्मसु न इन्द्रियार्थेषु	न {लोलुप इन्द्रियों के} कर्मों में {और} न इन्द्रिय {के स्पर्श-रूप-रसादि विविध} भोगों में
अनुषज्जते तदा योगारूढः उच्यते	आसक्त होता है, तब योग {की सर्वोच्च अव्यक्त स्थिति} में चढ़ा हुआ कहा जाता है।

[5-10 आत्म-उद्धार के लिए प्रेरणा और भगवत्प्राप्त पुरुष के लक्षण]

उद्धरेत् आत्मना आत्मानं न आत्मानं अवसादयेत्। आत्मा एव हि आत्मनो बन्धुः आत्मा एव रिपुः आत्मनः।। 6/5

आत्मना आत्मानं उद्धरेत् आत्मानं	अपने मन-बुद्धि द्वारा ज्योतिबिंदु आत्मा को ऊँची स्थिति {के हीरो} में ले जाए। आत्मा को
अवसादयेन्न हि आत्मैवात्मनः	{भ्रष्ट इन्द्रियों की} अधोगति में न जाने दे; क्योंकि ज्योतिबिंदु आत्मा ही अपना {सदाकाल}
बन्धुः आत्मा एव आत्मनः रिपुः	{सहयोगी} मित्र है। आत्मा ही अपना •शत्रु है। {हीरो पार्टधारी विश्वामित्र ही विश्वमित्र है।}

•जीवात्मा अपना ही मित्र है, अपना ही शत्रु है। (मु.ता.21.3.67 पृ.3 मध्य) {सदा मित्र एक ही विश्वनाथ है।}

बंधुः आत्मा आत्मनः तस्य येन आत्मा एव आत्मना जितः। अनात्मनः तु शत्रुत्वे वर्तेत आत्मा एव शत्रुवत्।। 6/6

येनात्मनात्मा जितः तस्यात्मैव	जिसने अपनी {चेतन बनी} मन-बुद्धि द्वारा ज्योतिबिंदु आत्मा को जीता है, उसकी आत्मा ही
आत्मनः बन्धुः त्वनात्मनः	{मन जीत होने से} अपना मित्र है, {दूसरा मित्र-शत्रु नहीं}; किंतु अनात्मस्थ देहभानी की
आत्मैव शत्रुवत् शत्रुत्वे वर्तेत	{चंचल मन वाली क्षीण बुद्धि} आत्मा ही शत्रु की तरह शत्रुता करने में तत्पर रहती है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।। 6/7

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा	आत्मजयी परमशांत {बिन्दु बने} पुरुष की परमपार्टधारी हीरो आत्मा (गीता15-17)

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः समाहितः	सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में तथा मान-अपमान में सन्तुष्ट रहती है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः। युक्त इति उच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।। 6/8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः	{शिव के} ज्ञान+विशेष ज्ञान=योग से तृप्त आत्मा, {परम्ब्रह्म के ऊँचे} शिखर पर स्थिर,
विजितेन्द्रियः समलोष्टाश्मकांचनः	विशेष कामेन्द्रिय को भी जीतने वाला, मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण आदि में समान {भाव वाला}
योगी युक्तः इति उच्यते	योगी योगनिष्ठ है ←ऐसा कहा जाता है। {ऐसे अलोलुप का 'योगक्षेमं वहाम्यहम' (गी.9-22)}

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु। साधुषु अपि च पापेषु समबुद्धिः विशिष्यते।। 6/9

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु	स्नेही, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी वा बंधुजनों में, {इन्द्रियों की}
साधुषु च पापेष्वपि समबुद्धिः विशिष्यते	{साधना कर्ता} साधू और पापियों में भी समान बुद्धि वाला विशेष माना गया है।

योगी युञ्जीत सततं आत्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः।। 6/10

यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः योगी	{चंचल} मन व निर्णायक बुद्धि का वशकर्ता, आशाहीन, असंग्रही योगी
एकाकी रहसि स्थितः सततं आत्मानं युंजीत	अकेला, एकांत स्थान में स्थित हुआ निरन्तर परमात्मा से योग लगाए।

[11-32 विस्तार से ध्यानयोग का विषय]

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरं आसनं आत्मनः। न अत्युच्छ्रितं न अतिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरं।। 6/11

तत्र एकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः। उपविश्य आसने युञ्ज्यात् योगं आत्मविशुद्धये।। 6/12

आत्मविशुद्धये शुचौ देशे चैलाजिन	{ज्योतिबिंदु} आत्मा की विशेष शुद्धि हेतु पवित्र स्थान में, {सूत से बने} वस्त्रसहित मृगचर्म

कुशोत्तरं नातिनीचं नात्युच्छ्रितं	{पवित्र} कुशाघास पर बिछाए, न अति नीचे {गर्त में}, न अति ऊँचे {स्थान पर}
आत्मनः स्थिरं आसनं प्रतिष्ठाप्य तत्रासने	{अभ्यासपूर्वक} अपना स्थिर आसन जमाकर, उस आसन पर {निश्चिंत हो}
उपविश्य मनः एकाग्रं कृत्वा	बैठकर, मन को {भ्रूमध्य आत्मस्टार में} एकाग्र करके, {विशेष कर्मयोगी ब्राह्मण इसप्रकार}
यतचित्तेन्द्रियक्रियः योगं युंज्यात्	चित्त, इन्द्रिय-क्रिया का वशकर्ता {एक मात्र अर्जुन-रथ व्यापी शिव से} योग लगाए।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्च अनवलोकयन्।। 6/13

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।6/14

स्थिरः कायशिरोग्रीवं सममचलं धारयन्	स्थिर हुआ {संन्यासयोगी} शरीर, सिर-गर्दन को एक सीध में अडोल रखते हुए
च स्वं नासिकाग्रं संप्रेक्ष्य	और अपनी {भृकुटि-मध्य में बुद्धि नेत्र से} नासिकाग्र में संपूर्ण खुली आँखों द्वारा {अपलक हुआ}
दिशोऽनवलोकयन्प्रशान्तात्मा विगतभीः	{निश्चल मन से} दिशाओं को न देखता हुआ, प्रशान्तचित्त हुआ, निर्भय {और}
ब्रह्मचारिव्रते स्थितः मनः संयम्य	{बलवती दृढ़ता से कामजीतेच्छा से} ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर हुआ, मन एकाग्र करके
मच्चित्तः मत्परः युक्त आसीत	मेरे में चित्त सहित आश्रित हो, {अव्यभिचारी इन्द्रियों द्वारा बाबा से} योग लगाए।

युञ्जन् एवं सदा आत्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थां अधिगच्छति।। 6/15

नियतमानसः योगी एवं सदा	नियमित मन वाला {नेमिनाथ} संन्यासयोगी {अभी-2 बताया} ऐसे, सदैव {ज्योतिबिंदु}
आत्मानं युंजन मत्संस्थां	{रूप सूक्ष्म अणु} आत्मा को {मुझ शिवज्योति में} जोड़ता हुआ मेरे में स्थित {सदा असीम}
निर्वाण परमां शान्तिमधिगच्छति	निर्वाणधाम की परमशान्ति को {नं. वार पुरुषार्थानुसार अतिशीघ्र ही} पा लेता है।

न अति अश्नतः तु योगः अस्ति न च एकान्तं अनश्नतः। न च अति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो न एव च अर्जुन।। 6/16

अर्जुन न तु अति अश्नतः च न	हे ज्ञानधन-जेता अर्जुन! न तो अधिक खाने वाले को {बहुत आलस्य/नींद आने कारण} और न
एकान्तं अनश्नतः योगः अस्ति च	{सभी संसारी भोगियों को भूख सताने से} बिल्कुल उपवास वाले का योग लगता है तथा
नाति स्वप्नशीलस्य च न जाग्रतः एव	न अधिक सोने वाले का और न पूरा जागने वाले का ही {अच्छा योग लगता है।}

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। 6/17

युक्ताहारविहारस्य कर्मसु युक्तचेष्टस्य	आहार-विहार में युक्तियुक्त, कर्मों में {धर्मानुकूल} युक्तियुक्त चेष्टावान का,
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगः दुःखहा भवति	{इसी प्रकार सदाकाल} नियमित निद्रालु&जाग्रत का योग दुःखहर्ता होता है।

यदा विनियतं चित्तं आत्मनि एव अवतिष्ठते। निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इति उच्यते तदा।। 6/18

यदा विनियतं चित्तं आत्मन्येव	जब विशेषतः {मन सहित 10 इन्द्रियों द्वारा} संयमित चित्त {ज्योतिबिंदु} आत्मा में ही
अवतिष्ठते तदा सर्वकामेभ्यः	भलीभाँति स्थिर हो जाता है, तब सब {प्रकार की श्रेष्ठ या निष्कृष्ट सांसारिक} कामनाओं से
निःस्पृहः युक्त इति उच्यते	बिल्कुल इच्छाहीन हुआ {सहजराज} 'योगयुक्त'{संन्यासी या कर्मयोगी} ऐसा कहा जाता है।

यथा दीपो निवातस्थो न इङ्गते सा उपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगं आत्मनः।। 6/19

यथा निवातस्थः दीपः नेङ्गते यतचित्तस्य	जैसे निर्वात स्थान में दीपक हिलता नहीं, {वैसे} वशीभूत चित्त वाली
आत्मनः योगं युंजतः योगिनः सोपमा स्मृता	आत्मा का लगाव {परमात्मा से} जुड़े {तो} योगी की वह उपमा याद की जाती है।

यत्र उपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र च एव आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।। 6/20

यत्र योगसेवया निरुद्धं चित्तं	जिस {अव्यक्त अवस्था} में {आत्मा का परमात्मा से} योगाभ्यास द्वारा नितान्त वशीभूत चित्त
उपरमते च यत्र आत्मना	{परमात्मा में} उपराम हो और जहाँ अपने मन-बुद्धि से {भ्रूमध्य में ज्योतिबिंदु स्वरूप में स्थिर}

आत्मानं पश्यन्नात्मन्येव तुष्यति	{अव्यक्त} आत्मा को देखता हुआ आत्मरूप {परमपिता शिव समान परमात्मा} में ही संतुष्ट होता है;

सुखं आत्यन्तिकं यत् तत् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियं। वेत्ति यत्र न च एव अयं स्थितः चलति तत्त्वतः।। 6/21

बुद्धिग्राह्यं यत् आत्यन्तिकं अतीन्द्रियं	{निर्णायक} बुद्धि से ग्राह्य जो उत्कृष्टतम {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के कलातीत} अतीन्द्रिय
सुखं तत् अयं यत्र वेत्ति च स्थितः	सुख है उसे {उत्कृष्ट योगी} जहाँ {जिस स्थिति में} जानता है & {वहीं पर} स्थिर हुआ,
तत्त्वतः न एव चलति	तात्विक रूप से {गीता (13-5) वर्णित संसार के 23 जड़ तत्वों द्वारा} कभी विचलित नहीं होता;

यं लब्ध्वा च अपरं लाभं मन्यते न अधिकं ततः। यस्मिन् स्थितः न दुःखेन गुरुणा अपि विचाल्यते।। 6/22

च यं लब्ध्वा ततः अपरं लाभं	और जो {स्वर्ग के अतीन्द्रिय सुख} पाकर उससे दूसरे {अधोगामी सांसारिक} लाभ को
अधिकं न मन्यते यस्मिन् स्थितः	अधिक {अच्छा} नहीं मानता, जिस {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ सुख} में स्थित हुआ
गुरुणा दुःखेन अपि विचाल्यते न	{कल्पान्त की महामृत्यु के आत्यंतिक} महान दुःख से भी विचलित नहीं होता;

तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितं। स निश्चयेन योक्तव्यो योगः अनिर्विण्णचेतसा।। 6/23

दुःखसंयोगवियोगं तं योगसंज्ञितं	दुःखों की प्राप्ति से दूर करने वाले उस {अतीन्द्रिय सुख} को {सहजराज} 'योग' नाम से
विद्यात् अनिर्विण्णचेतसा	जानना चाहिए। {बीमारियों से भरे सांसारिक जन्म-जरा-मरण के} दुःख दर्द रहित चित्त से
स योगः निश्चयेन योक्तव्यः	वह {सहजराज} योग निश्चयपूर्वक लगाना चाहिए; {क्योंकि 'निश्चयबुद्धि विजयते' ही सत्य बात है।}

सङ्कल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः। मनसा एव इन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। 6/24

संकल्पप्रभवान्सर्वान्कामान् अशेषतः त्यक्त्वा	संकल्प से पैदा सब कामनाओं को {निःसंकल्प हो} पूरी तरह त्यागकर,
मनसा एव इन्द्रियग्रामं समंततः विनियम्य	मन से ही इन्द्रिय-समूह को सब ओर से विशेष रूप से नियमित कर,

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया। आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चित् अपि चिन्तयेत्।। 6/25

शनैः-2 मनः धृतिगृहीतया बुद्ध्या	धीरे-2 मन {100 वर्षीय पु. संगम में नं. वार पुरुषार्थ से} धैर्य वाली बुद्धि द्वारा
उपरमेत् आत्मसंस्थं कृत्वा	{पूरा} उपराम हो जाए {मन-बुद्धिबल को चैतन्य} आत्मबिंदु में पूरा स्थिर करके
किंचित् अपि न चिन्तयेत्	{स्वर्ण लिंगरूप सगुण+निर्गुणात्मा सदाशिवज्योति सिवाय} कुछ भी चिंतन न करे।

यतो यतो निश्चरति मनः चञ्चलं अस्थिरं। ततः ततः नियम्य एतत् आत्मनि एव वशं नयेत्।। 6/26

अस्थिरं चंचलं मनः यतः-2	अस्थिर, चंचल {कपि जैसा} मन जहाँ-2 {अपनी देह, देह के संबन्धियों, स्थान विशेष या पदार्थों} से
निश्चरति ततः-2 एतत्	{हठपूर्वक} चलायमान हो, वहाँ-2 से इस {मन} को {भली-भाँति प्रयत्नपूर्वक & धैर्यपूर्वक}
नियम्यात्मन्येव वशं नयेत्	नियमित करके {स्टार-जैसी चेतन अणुरूप ज्योतिबिंदु} आत्मा के ही वश में ले आए;

प्रशान्तमनसं हि एनं योगिनं सुखं उत्तमं। उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतं अकल्मषं।। 6/27

हि प्रशान्तमनसं शांतरजसं	क्योंकि भली-भाँति शान्त मन वाले, शांत रजोगुण {और तामसीगुण} वाले {राजधारी}
एनं योगिनं ब्रह्मभूतमकल्मषमुत्तमं सुखमुपैति	इस योगी को परंब्रह्मजनित, दोषरहित, सर्वोत्तम {अतीन्द्रिय} सुख होता है।

युञ्जन् एवं सदा आत्मानं योगी विगतकल्मषः। सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखं अश्नुते।। 6/28

एवं सदात्मानं युंजन् विगतकल्मषः योगी	ऐसे आत्मा को सदा {शिवबाबा से} संयुक्त करता हुआ पापरहित योगी
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखं अश्नुते	सुख पूर्वक {साक्षात्} परंब्रह्म का संपूर्ण स्पर्शयुक्त अतीव सुख भोगता है।

सर्वभूतस्थं आत्मानं सर्वभूतानि च आत्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। 6/29

योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः	{परमपिता+परमात्मा की} याद में लगी हुई आत्मा सर्वत्र समान भाव होकर {गीता 5-18},

सर्वभूतस्थं आत्मानं च	समस्त प्राणियों में स्थित {ज्योतिबिंदु में भरे चेतन रिकॉर्ड रूप} आत्मा को अथवा
सर्वभूतानि आत्मनि ईक्षते	सब {सांसारिक} प्राणियों को {स्टार-जैसे} आत्मरूप में {बुद्धि रूपी तीसरे ज्ञान-नेत्र से} देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्य अहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। 6/30

यो सर्वत्र मां पश्यति च मयि	जो {प्रेमी-जैसा} सर्वत्र मुझे देखता है और {बीज में वृक्ष जैसा} मुझ {शिव+बाबा} में
सर्वं पश्यति अहं तस्य	सबको देखता है, {अर्थात् आत्मा सो परमात्मा के अज्ञान से दूर है}, मैं उससे {कभी}
प्रणश्यामि न च स मे प्रणश्यति न	दूर नहीं होता और वह {खास पु. संगम में} मेरे से {भी} अदृश्य नहीं होता।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वं आस्थितः। सर्वथा वर्तमानः अपि स योगी मयि वर्तते।। 6/31

एकत्वं आस्थितः यः सर्व	{पुरु. संगम के मुकर्रर अर्जुन-रथ में} एकव्यापी {परमपिता शिव} को जो {योगी} सब
भूतस्थितं मां भजति स योगी	प्राणियों में {नं. वार योग-ऊर्जा से} स्थित मुझे भजता है, वह {श्रेष्ठ} योगी
सर्वथा वर्तमानोऽपि मयि वर्तते	सब प्रकार से व्यवहार करते भी मेरे {परमपार्टधारी हीरो परमात्मरूप दिल} में है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यः अर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। 6/32

अर्जुन यः सर्वत्र आत्मौपम्येन सुखं यदि वा	हे अर्जुन! जो {पशु पक्षी-कीट आदि} सब प्राणियों में आत्मभाव से सुख को वा
दुःखं समं पश्यति स योगी परमः मतः	दुःख को समान देखता है, वह {आत्म-दृष्टि वाला} योगी परममान्य है।

[33-36 मन के निग्रह का विषय]

अर्जुनउवाच-यः अयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन। एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिरां।। 6/33

मधुसूदन त्वया साम्येन योऽयं	हे मधु {जैसे मीठे कामविकार के} हंता {शिवबाबा}! आपने साम्यता द्वारा जो यह

योगः प्रोक्तः एतस्य चंचलत्वात्	योग कहा, उसके लिए {मेरे कपि मन की} चंचलता {या अपनी आसक्तियों} के कारण
स्थिरां स्थितिं अहं पश्यामि न	कोई स्थिर आधार मुझे दिखाई नहीं देता। {जन्म-2 की चंचलदृष्टि आत्मदृष्टि में विघ्न है।}

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढं। तस्य अहं निग्रहं मन्ये वायोः इव सुदुष्करं।। 6/34

कृष्ण मनः चंचलं प्रमाथि	हे आकर्षणमूर्त शिवबाबा! मन {बंदर जैसा} चंचल है, {इन्द्रियाँ} मथ डालता है, {बड़ा}
बलवत् दृढं हि अहं तस्य निग्रहं	बलवान है, हठी है; क्योंकि मैं उस {सात्विक बुद्धि रहित बेलगाम घोड़े} का रोकना
वायोः इव सुदुष्करं मन्ये	{मुश्किल से हठयोग पूर्वक रोकी जाने वाली प्राण-} वायु समान अति कठिन मानता हूँ।

श्रीभगवानुवाच-असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। 6/35

असंशयं महाबाहो चलं मनः दुर्निग्रहं तु	निस्संदेह हे महाबाहु! {तीव्रधावी} चंचल {कपिध्वज} मन दुराग्रही है; किन्तु
कौन्तेय वैराग्येण चाभ्यासेन गृह्यते	हे अर्जुन! {एटामिक महाविनाश के} वैराग्य & योगाभ्यास से वश में आता है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः। वश्यात्मना तु यतता शक्यः अवाप्तुं उपायतः।। 6/36

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप	असंयत {इच्छाओं से भरे-पूरे इस} मन {रूप मनुआ} वाले के लिए योग की प्राप्ति कठिन है,
इति मे मतिः तु यतता उपायतः	ऐसा मैं {भोगी आत्माओं लिए} मानता हूँ; किंतु प्रयत्नपूर्वक {अभी-2 बताए} उपायपूर्वक
वश्यात्मना अवाप्तुं शक्यः	वशीभूत मन {निरंतर वैराग्य &'मामेकं' की अव्यभिचारी याद} से हाथ आ सकता है।

[37-47 योगभ्रष्ट पुरुष की गति का विषय और ध्यानयोगी की महिमा]

अर्जुन उवाच-अयतिः श्रद्धया उपेतो योगात् चलितमानसः। अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।। 6/37

कृष्ण योगात् श्रद्धया उपेतः	हे आकर्षणमूर्त {शिवबाबा!} सहजराजयोग से श्रद्धायुक्त; {किंतु विकारों से}

चलितमानसः अयतिः योगसंसिद्धिं	विचलित मन वाला अयोगी= योग की संपूर्ण सिद्धि
अप्राप्य कां गतिं गच्छति	न पाकर किस गति को जाता है?

कच्चित् न उभयविभ्रष्टः छिन्नाभ्रम् इव नश्यति। अप्रतिष्ठः महाबाहो विमूढः ब्रह्मणः पथि।। 6/38

महाबाहो ब्रह्मणः पथि विमूढः	हे विशालभुजी अष्टमूर्ति शिवबाबा! परंब्रह्म के मार्ग में भूला हुआ
अप्रतिष्ठः उभयविभ्रष्टः	स्थितिभ्रष्ट योगी, दोनों तरह से भ्रष्ट हुआ,
छिन्नाभ्रम् इव कच्चित् न नश्यति	फटे बादल की तरह कहीं नष्ट तो नहीं हो जाता?

एतत् मे संशयं कृष्ण छेत्तुं अर्हसि अशेषतः। त्वदन्यः संशयस्य अस्य छेत्ता न हि उपपद्यते।। 6/39

कृष्ण मे एतत् संशयं अशेषतः	हे आकर्षणमूर्त! मेरे इस सन्देह को पूरी तरह
छेत्तुं अर्हसि हि अस्य संशयस्य	नष्ट करने में समर्थ हो; क्योंकि इस संशय का
छेत्ता त्वदन्यः न उपपद्यते	नाशकर्ता आपके सिवा दूसरा नहीं मिल सकता।

श्रीभगवानुवाच-पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।। 6/40

पार्थ तस्य न इह अमुत्र एव	हे पृथ्वीपति! उस का न इस लोक में, परलोक में भी
विनाशः न विद्यते हि तात कश्चित्	विनाश नहीं होता; क्योंकि हे तात! कोई भी
कल्याणकृत् दुर्गतिं न गच्छति	कल्याणकारी दुर्गति में नहीं जाती।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टः अभिजायते।। 6/41

योगभ्रष्टः पुण्यकृतां लोकान्	योगभ्रष्ट व्यक्ति , पुण्यात्माओं के लोकों को
प्राप्य शाश्वतीः समाः उषित्वा	पाकर, अनेक वर्षों तक रहकर,
शुचीनां श्रीमतां गेहेऽभिजायते	, पवित्र श्रीमन्तों के घर में जन्म लेता है

अथवा योगिनां एव कुले भवति धीमतां। एतत् हि दुर्लभतरं लोके जन्म यत् ईदृशं।। 6/42

अथवा धीमतां योगिनां कुले	अथवा बुद्धिमान योगियों के कुल में
एव भवति हि ईदृशं यत्	ही पैदा होता है; किन्तु ऐसा जो
जन्म एतत् लोके दुर्लभतरं	जन्म है, इस लोक में अधिक कठिन है।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकं। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।। 6/43

तत्र पौर्वदेहिकं तं बुद्धिसंयोगं लभते	वहाँ पूर्वजन्म से प्राप्त वह बुद्धि-संयोग पाता है
च ततः कुरुनन्दन	और फिर हे कुरुवंशियों के आनंददाता अर्जुन!
भूयः संसिद्धौ यतते	पुनः सम्पूर्ण सिद्धि पाने हेतु यत्न करता है।

पूर्वाभ्यासेन तेन एव ह्रियते हि अवशः अपि सः। जिज्ञासुः अपि योगस्य शब्दब्रह्म अतिवर्तते।। 6/44

तेन पूर्वाभ्यासेन एव सः अवशः	उस पूर्वजन्म के अभ्यास द्वारा ही वह विवश होकर
ह्रियते हि योगस्य जिज्ञासुः अपि	खिंचता है राजयोग का ज्ञान पाने का इच्छुक भी
शब्दब्रह्म अतिवर्तते	आवाज़ वाले ब्रह्मा के पार चला जाता है;

प्रयत्नात् यतमानः तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिं।। 6/45

तु प्रयत्नात् यतमानः योगी संशुद्धकिल्बिषः	किन्तु प्रयत्नपूर्वक योगाभ्यासी योगी सम्पूर्ण पाप के धुल जाने पर
अनेकजन्मसंसिद्धः ततः परां गतिं याति	अनेक जन्म में सम्पूर्ण सिद्ध हुआ, बाद में {विष्णुरूप} परमगति को पाता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिकः योगी तस्मात् योगी भवार्जुन।। 6/46

योगी तपस्विभ्यः अधिकः ज्ञानिभ्यः अपि	राजयोगी {दैहिक ताप वाले} तपस्वियों से बढ़कर है, आत्मज्ञानियों से भी
अधिकः मतः च कर्मिभ्यः योगी अधिकः	श्रेष्ठ मान्य है और कर्मकाण्डियों से {तो सहज} राजयोगी बड़ा है {ही};
तस्मात् अर्जुन योगी भव	अतः हे अर्जुन! {तू आत्मस्मृति के तापसी वा त्रिगुणबद्ध कर्मकांडियों से भी श्रेष्ठ} योगी बन।

योगिनां अपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।। 6/47

सर्वेषां योगिनामपि यः श्रद्धावान्	सब योगियों में भी जो {दिल+दिमागयुक्त} श्रद्धा-भावना वाला {सहज राजयोगी}
मद्गतेन अन्तरात्मना मां	मेरे {मूर्तिमान 'अव्यक्तमूर्ति' (गी. 9-4) महादेव हीरो} में लगाई मन-बुद्धि द्वारा मुझको
भजते स मे युक्ततमः मतः	याद करता है, उसे मैं सबसे श्रेष्ठ {दिमाग वाला समझू & दिलसहित भावपूर्ण} योगी मानता हूँ।

अभ्यास प्रश्न-अध्याय 6

(I) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

1) बेहद का संन्यासयोगी कौन है?

2) योगी योग की सर्वोच्च स्थिति में चढ़ा हुआ कब कहा जाता है?

3) हमारा मित्र कौन है?

4) किस प्रकार के मनुष्य की आत्मा अपना मित्र और अपना शत्रु है?

5) योगनिष्ठ योगी किसे कहेंगे?

6) किन-2 प्रकार की आत्माओं में समान बुद्धि वाला विशेष माना गया है?

7) किस प्रकार की आत्मा निरंतर परमात्मा से योग लगाये?

8) आत्मा की विशेष शुद्धि हेतु क्या प्रक्रिया बताई है

9) योग लगाने की क्या विधि बताई है गीता में?

10) निर्वाणधाम की परमशांति को कौन प्राप्त कर पाता है?

11) गीता के अनुसार किस प्रकार की आत्माओं का योग नहीं लगता है?

12) किस प्रकार की आत्माओं का योग दुखःहर्ता होता है ?

13) आत्मा सहजराज योगयुक्त कब कही जाती है?

14) 'सहज राजयोग' की परिभाषा क्या है?

15) मन को सहज-2 उपराम होने के लिए कितना टाइम बताया है?

16) चंचल मन को किस प्रकार वश में लाया जा सकता है?

17) परब्रह्मजनित और दोषरहित सर्वोतम सुख किसे प्राप्त होता है?

18) मेरे हीरोपार्टधारी रूप दिल में किस प्रकार की पुरूषार्थी आत्मा रहती है?

19) परमश्रेष्ठ मान्य योगी कौन है?

20) अर्जुन ने शिवबाबा से कहा-आपने साम्यता द्वारा जो यह योग कहा, उसके लिए मन की चंचलता या अपनी आसक्तियों के कारण कोई स्थिर आधार मुझे दिखाई नहीं देता , इसका क्या कारण है?

21) योग की प्राप्ति किनके लिए कठिन है?

22) पुरुषार्थ में तीव्रता लाने के लिए क्या करें?

23) करत-2 अभ्यास के जड़मति होत सुजान, यह कहावत कौन-से श्लोक पर लागू होती है?

24) तुम मुझे जितना याद करते हो उतना मैं तुम्हारे साथ हूँ, यह किस श्लोक से सिद्ध करेंगे?

25) पाप कर्म भस्म किए बिगर आत्मा शांतिधाम वापस नहीं जा सकती।

26) सिर्फ एक शिवबाबा के सिवा कोई भी गुरु प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते हैं। सम्बंधित श्लोक का अर्थ बताएं

27) मन के स्वाभाविक गुण धर्म क्या- क्या हैं ?

28) योगी के नेत्र एकटिक हो जाते हैं, इस प्रसंग में कौन-सा श्लोक लागू होता है?

29) डिप्रेशन या मानसिक तनाव की बीमारी से निकलने का उपाय किस श्लोक में है?

(II)-निम्नलिखित श्लोक का अर्थ बतायें-

1-उद्धरेत् आत्मना आत्मानं न आत्मानं अवसादयेत्।

2-युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

3-अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

4-यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

(III) रिक्त स्थान की पूर्ति करें-

1)यथा दीपो ..... न इङ्गते सा उपमा स्मृता।

2) ..... {आत्मस्मृति वाले} तपस्वियों से बढ़कर है, आत्मज्ञानियों से भी.....माना है।

3) असंयत .....मन {रूप मनुआ} वाले के लिए .....की प्राप्ति ..... है।

4) जो सब प्राणियों में आत्मभाव से ....को वा.....को समान देखता है, वह योगी ..... है।

5) ..... परमशांत {बिन्दु बने} पुरुष की .....आत्मा (गीता15-17) सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में तथा मान-अपमान में ..... रहती है।

(IV) निम्नलिखित महावाक्यों की श्लोक के आधार से समझानी दें-

1) ब्राह्मण धर्म में तुम कितने जन्म लेते हो? कोई दो/तीन जन्म भी लेते हैं ना! (मु.ता. 12.3.69 पृ.3 मध्यांत)

2) अभी रामचन्द्र की पूजा करते हैं, उनको भी यह पता नहीं है कि राम कहाँ गया। यह तुम बच्चे ही समझते हो, राम की आत्मा तो ज़रूर पुनर्जन्म लेती रहती होगी यहाँ। इम्तहान में नापास होते हैं; परंतु कोई-न-कोई रूप में होंगे तो ज़रूर ना! यहाँ ही पुरुषार्थ करते रहते हैं। इतना नाम बाला जो है राम का सो ज़रूर आवेंगे, उनको नॉलेज लेनी पड़ेगी। अभी कुछ भी मालूम नहीं पड़ता है। (मु.ता. 9.10.68 पृ.1 मध्यांत)

3) कई बार बच्चे दिमाग यूज करते हैं लेकिन दिल और दिमाग दोनों मिलाके नहीं करते। दिमाग मिला है उसको कार्य में लगाना अच्छा है लेकिन सिर्फ दिमाग नहीं। जो दिल से करते हैं तो दिल से करने वाले के दिल में बाप की याद भी सदा रहती है। (अ.वा.ता. 16.2.96 पृ.121 अंत)

4) खाना भी बहुत कम। जास्ती हवच ना होनी चाहिए। याद में रहने वालों का भोजन भी बहुत सूक्ष्म होता है। (मु. ता. 29.6.70 पृ .3 अंत)

5) कोई भी बात में संशय आता है तो पूछना चाहिए। बाप सभी कुछ समझाते रहते हैं। (मु.ता. 5.7.68 पृ.3 अंत)

(V)-पुरुषार्थ की शुरुआत से लेकर अंत तक की परिक्रता पाने के लिए मन को कैसे वश में करना है उसके लिए बाबा ने कौन-कौन श्लोक बताये है (बाबा की व्याख्या के अनुसार श्लोक बतायें अर्थ सहित)